इकाई 5 सिख शक्ति का उद्‌य*

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 मुगलो के आने से पूर्व का पंजाब

5.3 बाबर के आगमन के समय का पंजाब

5.4 मुगल और सिख धर्मगुरू

5.5 सिख–मुगल संघर्ष

5.6 सिख राज्य की आरंभिक स्थापना

5.7 खालसा पंथ से पूर्व व पश्चात की सिख पहचान

5.8 सारांश

5.9 शब्दावली

5.10 बोध प्रश्न के उत्तर

5.11 संदर्भ

5.0 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप यह जान सकेंगे कि :

- बृहद सामाजिक–राजनैतिक संदर्भ में मुगल पंजाब में किन परिस्थितियों में आये।
- मुगल बादशाहों के साथ सिख धर्म गुरूओं के सम्बन्ध कैसे रहे।
- मुगलों के साथ संघर्ष और प्रांरभिक सिख राज्य की स्थापना।
- सिख पहचान बनाने में खालसा पंथ का महत्व।

5.1 प्रस्तावना

दक्षिणी एशिया के सीमान्त क्षेत्र में राज्यों की स्थापना प्रक्रियाओं में पंजाब का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। उत्तर भारत के गंगा के मैदानी क्षेत्र और अफगानिस्तान में राज्यों के मध्य में स्थित यह क्षेत्र समृद्धि के साथ साथ दोनों ओर से होने वाले हमलों को सहता रहा। अफगान और मुगलों के साथ समकालीन सिख इतिहास लेखन में अंकित जटिल सम्बन्धों के महत्व को जिसे, गुरूनानक जी के प्रादुर्भाव और तत्पश्चात् राणा रंजीत सिंह के अंर्तगत स्थापित खालसा राज के समय, सोलहवीं से अठ्ठारवीं सदी के दौरान उभरे सम्बन्धों को समझने के लिये, रेखांकित किया जाना जरूरी हैं। पंजाब में बाबर की 1526 की विजय से पूर्व, यह क्षेत्र बड़े शहरी केन्द्रों का साक्षी रहा, जो सिंध से मुलतान और दिल्ली तक, पेशावर से लाहौर,

*योगेश स्नेही, अम्बेडकर विश्वविद्यालय, स्कूल आफ लिबरल स्टडीज, दिल्ली।

लाहौर से सरहिन्द और दिल्ली तक व्यापार मार्गों से प्रमुखता से जुड़ा रहा। ये शहरी केन्द्र, भारत के पश्चिम में मध्य एशिया, परशिया और अरब संसार की संस्कृति और व्यापार के साथ और कश्मीर, राजपूताना, गंगा के मैदानी क्षेत्रों और ढाका सहित पंजाब से जुड़े थे। सल्तनत काल तक मौजूद पंजाब के पांचों दोआबों के बीच के बाड़ (ऊंचे–ऊंचे पेड़ों के वन–बीहड़ इलाके) मुगल काल आते–आते सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक तौर पर काफी परिवर्तित हो चुके थे।

5.2 मुगलों के आने से पूर्व का पंजाब

सल्तनत काल के अंर्तगत नाथ सिद्धों वैष्णवों, शाक्त और सूफी परम्पराओं से जुड़े धार्मिक केन्द्रों की बहुतायत रही। स्थानीय साधु–सन्तों और देवताओं से संबंधित धार्मिक स्थलों, यक्ष–मंदिर, धर्मशाला, दरगाह, डेरे, जठेरे, समाधियाँ, खानकाह आदि –इस क्षेत्र के ग्रामीण एवं शहरी दोनों इलाके में फैले हुए थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के आते आते, सल्तनतकालीन व्यापार मार्ग में सूफी समाधियों का एक व्यापक जाल उभर कर आ चुका था, जो प्रथमतः गौरी और गजनवी शासकों के काल में, और बाद में, अधिकांश तुगलक शासन काल में संरक्षण से संभव हुआ। शुरूआती सूफी सन्तों में शेख हुसैन ज़नजानी और शेख अल हुजवीरी 11वीं शताब्दी तक लाहौर मे बस गये थे। बाद में, तुगलकों द्वारा उच और मुलतान की सुहरावर्दी सन्तों की समाधियों से लेकर बाबा फरीद पाकपत्तन, भटिंडा बाबा हाजिरी रतन, हैदर शेख मलेरकोटला वाले, हिसार की सन्त समाधियाँ, महरौली के कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी को संरक्षण प्रदान किया गया। चिश्ती सूफी बाबा फरीद, सभी धार्मिक संबंद्धताओं से परे प्रसिद्धि का एक उदाहरण बने। जो इस बात का भी संकेतक बन गया कि उस क्षेत्र के निर्माण में उनकी समाधि और उनकी कविताओं का प्रभाव रहा। रिचर्ड एम. ईटन ने कृषि–पशुपालकों की जिंदगी को कृषक में परिवर्तित कर जाटो को बसाने में समाधि के दीवानों के महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित किया है। जाटों का इस्लामीकरण, कृषि क्षेत्र में विस्तार, और की प्रक्रिया सल्तनत व्यापार मार्गों के आसपास चलती रही। तुगलकों को हिसार जैसे नये शहर बसाये जाने, मुलतान और हिसार के क्षेत्रों में कृषि भूमि को बढ़ाने के लिये नहरों के जाल को विस्तार देने, और स्थानीय राजपूत भाटी वंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भी जाना जाता है। स्थानीय शासन ने इन संबधों को कार्यान्वित करने के लिये क्षेत्र के अभिजात्य वर्ग पर बल का उपयोग किया। इस माहौल को 1398 में तैमूर द्वारा किये गये विध्वंस और तबाही ने बुरी तरह से प्रभावित किया और यहाँ तक कि लोधी शासन भी इसे पुनर्जीवित नहीं कर सका, जिसे सुरिन्दर सिंह ने राज्य–स्थापना का 'तुगलकी–नमूना' बताया हैं।

बाद में, जब बहलोल लोधी दिल्ली पर पकड़ बनाने की योजना बना रहा था, वह मलेर कोटला में शेख हैदर की खानकाह से गुजरा, ऐसा कहा जाता है कि शेख ने बहलोल को दिल्ली प्रदान कर दी। लोधी शासकों ने इस समाधि को संरक्षण प्रदान किया, और सूफी सन्त के साथ दीर्घकालिक पारिवारिक सम्बन्ध भी बनाये। सल्तनत के पूरे कालखण्ड में, इस प्रकार के पवित्र और आपसी सम्बन्धों के आदान–प्रदान ने उस क्षेत्र के स्थानीय आभिजात्य वर्ग के साथ नये सम्बन्धों का आगाज किया, भाई–चारा बढ़ाया जिससे खोखरों के विद्रोह को कमजोर किया गया और मंगोल और कारलुघ के आक्रमणों को भी टोका गया। आज समाज के मध्य नज़र आता सांप्रदायिक विभाजन सुल्तानी शासन के दौरान नज़र नहीं आता है। जैसा कि सुरिन्दर सिंह द्वारा दामोदार रचित हीर राझाँ के मशहूर 'किस्से' की व्याख्या में

दिखाया गया है। यह क्षेत्र मुगल–काल के पूर्व भी व्यापारिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्रियाओं का भी केन्द्र रहा। जाटों के इस्लामीकरण में राज्य–स्थापना की यह प्रक्रिया महत्वपूर्ण रही।

11वीं शताब्दी तक सिंध से पंजाब के लिये जाटों का प्रवास उस क्षेत्र में विशद ऐतिहासिक परिवर्तन भी लाया। मुख्यत उस की ओर बढ़ने और बसने के बाद, कुछ जाट वंश के लोग, सल्तनत काल के समाप्त होने तक, पूर्व की ओर बढ़ने लगे। मुगल–काल के आरंभ होने पर जाटों को जमीदार के रूप में जाना जाने लगा। *आइन–ए–अकबरी* में जाट का संदर्भ जमींदारी और प्रमुख कृषि कार्य संवर्ग से लिया गया। वे लोग मुगल शासन में प्राथमिक रूप से उत्पादक और महत्वपूर्ण योगदानकर्ता थे।

5.3 बाबर के आगमन के समय का पंजाब

सल्तनत–काल की समाप्ति पर, सिरसा और भटिन्डा का व्यापार–मार्ग थार रेगिस्तान के विस्तार के कारण मुश्किल में पड़ने लगा था। इसके कारण जिसे आज ग्रैड ट्रंक रोड कहा जाता है, धीरे–धीरे विकसित होने लगा। शेरशाह सूरी द्वारा परिकल्पित इस सड़क ने पेशावर और मुल्तान को पानीपत, थानेसर सरहिन्द और लाहौर के रास्ते दिल्ली से जोड़ दिया। इस प्रकार, जबकि सल्तनत काल को दक्षिणी पंजाब में तुगलक संरक्षण के लिये चिन्हित किया गया, लोधी शासन के समय तक, लाहौर और दिल्ली के मध्य उत्तरी मार्ग में पड़ने वाले शहरो के सम्पन्न होने की स्थिति बन गई। मध्य पंजाब में इस परिवर्तन का लाभ पंजाब के जाट, अरोड़ा और सारस्वत ब्राह्मण तथा खत्रियों की जातियों को प्रमुखता से मिलने लगा। लोधी वंश के पतन और बाबर के आगमन से इस क्षेत्र की सम्पन्नता में बदलाव आया। बाबर के हमले की आलोचनात्मक टिप्पणी में गुरूनानक (जन्म 1469) ने अपनी *बाबर बानी* में पंजाब में विनाश के लिये लोधी शासन की सुरक्षा प्रदान करने में असक्षमता और बाबर द्वारा लोगों की हत्या करने के कृत्य को दोष दिया। बाद में, मुगल–काल के दौरान सख्त भू–राजस्व प्रशासन की स्थापना के साथ पंजाब में एक नये युग का प्रांरभ हुआ। इस क्षेत्र में मुगलों द्वारा किये गये विनिवेश से नये व्यापारिक और राजस्व के केन्द्रों की स्थापना, मुगल राजमार्ग हाईवे के साथ–साथ व्यापार, यात्राओं, शहरीकरण और धार्मिक पवित्र स्थलों का आविर्भाव हुआ। लाहौर और सरहिन्द के चारों ओर वृहत कृषि–विस्तार इस दौरान प्रमुखता से हुआ।

गुरूनानक का परिवेश एक पवित्र ऊर्जावान काल खण्ड का प्रतिनिधित्व भी करता है, जिसमें उस क्षेत्र में प्रचलित एकेश्वरवादी परिदृश्य, जिसमें लोकप्रिय नाथ, सूफी और सिख धार्मिक सम्प्रदायों के बीच बहस और आपस में टकराहट की संभावनाओं की स्थिति थी, साथ ही अन्य धार्मिक सम्प्रदाय, जैसे वैष्णव, शाक्त, सुन्नी, शिया इत्यादि भी थे। तलवन्डी (पंजाब) के खत्री परिवार में जन्में गुरूनानक के पिता गाँव के प्रधान के मातहत पटवारी का कार्य देखते थे। उनका संयुक्त परिवार भी प्रशासनिक कार्य सम्बन्धी सेवाओं में विस्तृत रूप से लगा हुआ था। उन्होंने अल्प समय के लिये लोधी शासक के अन्तर्गत प्रशासक के रूप में भी कार्य किया। रहस्यवाद की ओर झुके हुए गुरू नानक की जीवनी (जन्मसाखी) हमें बताती है कि वह एक प्रतिभाशाली बालक थे। गुरू नानक के प्रसिद्ध यात्रा विवरणों (उदासी) ने, जो भारतीय उपमहाद्वीप और पश्चिमी एशिया से संबंधित हैं उनके गंभीर और व्यापक धार्मिक दृष्टिकोण को निर्धारित करने में सहायता की। उनके दिखाये गये रास्ते, दी गई शिक्षा के

द्वारा आरंभिक 16वीं शताब्दी में सिख समाज (शिष्य और छात्र) की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। पंजाब में कृषि–पशुपालकों के कृषक बनने की प्रक्रिया गुरू नानक के जीवन काल के समानान्तर चली। आश्चर्य नही है कि उनके द्वारा प्रतिपादित गृहस्थ धर्म ऐसी आर्थिक क्रिया की ओर ले जाता है जो उसे अनुकूल लगा। उन्होंने सूफी समाज की सामूहिक रसोई की प्रथा लंगर को सामाजिक व्यवस्था का अंग बना दिया। गुरु नानक ने समकालीन एकेश्वरवादी कबीर से साझा करते हुए जाति–प्रथा से मुक्त और धार्मिक विशेषताओं के बंधनों से परे एक समाज की परिकल्पना की।

नानक देव के तुरंत बाद के आये चार उत्तराधिकारियों ने उपमहाद्वीप में नानक पंथ का विस्तार किया, यद्धपि यह पंजाब के अधिकतर मैदानी इलाके, सिंध और गंगा के मैदान तक ही प्रभावी रहा। प्रथम चार उत्तराधिकारियों के मुगल शासन के साथ सौहार्द्ध सम्बन्ध रहे। सिख इतिहास बताता है कि उन्होंने करतारपुर गोइन्दवाल और रामदासपुर (जो बाद में अमृतसर कहलाया) को बसाया। ये परिसर शीघ्र ही धार्मिक क्रियाकलापों और समागमों के केन्द्र के रूप में उभरे। कहा जाता है कि 1569 में अकबर ने अपने दौरे के दौरान गुरू अमरदास से मुलाकात के समय गोइन्दवाल में लंगर चखा था। गोइन्दवाल एक महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल के रूप में जाना गया। गुरू अमरदास ने वहां पर एक बावड़ी का निर्माण कराया। घनिश्ठ शिष्यों को मंजी नियुक्त किया गया जो प्रवचन देते थे। बाद में गुरू रामदास ने मंजी प्रथा को मसन्द (जो गद्दी पर बैठते थे) से प्रतिस्थापित कर दिया । ये लोग बहुत अधिकारयुक्त हुआ करते थे। प्रवचन देने के अतिरिक्त मसन्द से आशा की जाती थी कि वे संगत की व्यवस्था भी देखेंगे और गुरू को मिलने वाले चढ़ावे को भी जमा करेंगे, (दसावन्ध जो किसी भी आय का हिस्सा होता था) जो गुरू को दे दिया जाता था। सिख गुरूओं की आध्यात्मिक और लौकिक शक्ति अकबर के बाद मुगल शासन के लिये शीघ्र ही एक चुनौती के रूप में देखी जाने वाली थी ।

चज, रचना और बारी के दोआब में कृषि कार्य में आये बदलाव का श्रेय अधिकांशत इस काल के दौरान कुओं द्वारा की जाने वाली सिंचाई को जाता है, जो या तो हस्त चालित होते थे, तो अन्य जिसमें लीवर का प्रयोग किया जाता था, कुछ में पशु शक्ति का प्रयोग होता था, से चालित होते थे, जैसे परशियन व्हील (साकिया)। इरफान हबीब तर्क देते हैं कि पंजाब में आरंभिक मुगल शसन में कृषि कार्य के विस्तार में परशियन व्हील का प्रमुख योगदान रहा। यह पंजाब में जाटों के बसने के साथ–साथ हुआ। यद्यपि चेतन सिंह ने इसका श्रेय विभिन्न प्रकार की कुओं की सिंचाई प्रणाली जो चरस, ढेकली या नौरिया थी, को दिया है जिनका इस्तेमाल पानी की गहराई और भूमि की किस्म पर निर्भर था। गुरू अर्जुन (मृत्यु 1606) की अमृतसर के चारों ओर कृषि कार्य में विस्तार में गहरी रूचि को उनके द्वारा निर्मित कराये गये छः पहियों वाले परशियन व्हील (छेहर्ता) में देखा जा सकता है, यहाँ तक कि उस इलाके को भी उसी नाम से जाना जाने लगा। इन सभी कारणों से कृषि उत्पाद में वृद्धि होने लगी और किसानों पर केंद्रीयकृत भू–राजस्व का बोझ बढ़ने लगा। मुगल शासन की इन केन्द्रीकरण की प्रवृतियों को स्थानीय मुखियाओं द्वारा हमेशा पसंद नहीं किया गया, बल्कि उन्होंने इसको उनके पारम्परिक स्वाययता के अधिकार के सामने चुनौती के रूप में देखा। 16वीं शताब्दी की दुल्लामही की कथा के द्वारा सुरिन्दर सिंह इसका वर्णन करते हैं– कि सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब स्थानीय प्रभावशाली लोगों द्वारा एकत्र होने की कोशिश नाकाम हुई तो उनको मुग़लों द्वारा बड़ी बर्बरता से कुचला गया था। मुगल शासक जनजातीय मुखियाओं और रियासतों के राजाओं के साथ सहयोग को प्रमुखता देते थे। बीच के कम

ताकतवर जमीदारों से अपेक्षा की जाती थी कि वे इसमें सहयोगी बनें। गौरतलब है कि इसी दौरान 1598 में, गुरु अर्जुन देव के आमंत्रण पर जब अकबर ने गोइंदवाल इलाके का दौरा किया उसने मानसून के असफल हो जाने के कारण हुई फसल की बरबादी के मद्देनज़र भू–राजस्व (लगान) की राशि माफ कर दी।

बोध प्रश्न – 1

1) मुगलों के आगमन के समय पंजाब की सामाजिक–राजनैतिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी पंजाब में हुए में कृषि में हुए विस्तार पर एक टिप्पणी दीजिए।

.....

.....

.....

.....

5.4 मुगल और सिख धर्मगुरू

अकबर के गोइन्दवाल दौरे को मध्य पंजाब में उठे किसानों के विद्रोह को समाप्त किये जाने के प्रयास के रूप में भी देखा जा सकता है, क्योंकि यह क्षेत्र, मध्य पंजाब, मुगलों की प्रशासनिक और भू–राजस्व की दृष्टि से नियंत्रण बनाये रखने के लिये महत्वपूर्ण था। मुगलों द्वारा नाथ, सूफी और सिख धर्म के पवित्र स्थलों को संरक्षण प्रदान किया जाना भी सामाजिक और राजनैतिक सहयोग निर्मित किये जाने के प्रयासों की तरह भी देखा जा सकता है। इस प्रक्रिया में, मुगलों ने तत्कालीन प्रचलित सार्वभौमिकता के विचारों को स्वीकार किया और इस प्रकार पंजाब पर शासन करने की वैधता प्राप्त की। पंजाब में शुरुआती मुगल–सिख इतिहास, इस काल खण्ड में मुगल–सिख के आपसी सहयोग का प्रतिनिधित्व करती है। इस गठबन्धन में बदलाव सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के लम्बे समय के दौरान आता रहा, जिसमें मध्यकालीन पंजाब में सम्पत्ति के स्वामित्व, उत्तराधिकार और सार्वभौमिकता की बदलती अवधारणाओं का असर रहा। आश्चर्य नहीं है कि अकबर की मृत्यु के बाद, मुगल न्यायालयों में उत्तराधिकार सम्बन्धी और गुरू रामदास की मृत्योपरान्त (मृत्यु 1581) गुरू गद्दी पर उठे उत्तराधिकार के प्रश्नों में एक प्रकार की समानता दिखाई देती हैं। विद्रोहिओं के गठबन्धन ने सिख गुरूओं के साथ मुगल शासकों के संबंधों का स्वरूप तय किया और उस क्षेत्र के इतिहास की धारा को बदल कर रख दिया। इस मनमुटाव, जो खुसरो (जहांगीर के विद्रोही पुत्र) के गुरू अर्जुन देव से भेंट करने और पृथ्वीचन्द (गुरू रामदास के ज्येष्ठ पुत्र) द्वारा मुग़लों के उत्तराधिकार के युद्ध में रूचि दिखाने और सहयोग देने की वजह से हुआ, का सबसे पहला अंजाम गुरू अर्जुन देव की 'शहादत' के रूप में दिखा ।

प्रारंभिक सिख समुदाय प्रमुखतया एक मौखिक समुदाय था। परम्परानुसार, गुरू के शब्दों (सबदों) के प्रसार में पंजाबी चारणों का महत्वपूर्ण योगदान रहा था। गुरू नानक का भाई मरदाना; उनके मुसलमान रबाबी और गायक, के साथ सहयोग सिख परम्परा से गहरे रूप से जुड़े रहे। मरदाना के उत्तराधिकारी पंजाब के 1947 में हुए विभाजन तक लगातार इस उत्तरदायित्व को निभाते रहे। मंजी और मसन्द की संस्था भी, इसी प्रकार, गुरू के सबदों के प्रसार में और संगत की व्यवस्था करने में महत्वपूर्ण योगदान देते रहे। *'आदि ग्रन्थ'* के संकलन में सिख सम्प्रदाय को पवित्र धार्मिक पाठ का स्वरूप मिला। गुरू अर्जुन ने सिख गुरूओं और सूफी भक्ति सन्तों की कविताओं का संकलन 1604 में *'आदि ग्रन्थ'* के रूप में करने का महत्वपूर्ण कार्य किया, जिसने विश्व पटल पर सिख समुदाय के उभरते स्वरूप को परिभाषित किया। हर जोत् ओबेराय 'आदि ग्रन्थ' से एक्कीस वर्ष पहले संकलित किये गये *फतेहपुर पाण्डुलिपि* से इसकी आश्चर्यजनक समानता का उल्लेख करते हैं। *फतेहपुर पाण्डुलिपि* मुख्यतः सूरदास और 35 अन्य कवियों, जैसे कबीर, नामदेव, रविदास, परमानंद और कान्हा, के संकलित पदों व भजनों के संकलन से तैयार किया गया है। दोनों ही पाण्डुलिपि उन रागों का उल्लेख करते हैं जिनमें उनको गाया जाना हैं। सिख इतिहास के इन आपस के सम्बन्ध के आयामों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। उदाहरण के लिये पशौरा सिंह का तर्क है कि गुरू अर्जन ने *आदि ग्रन्थ* का अंतिम स्वरूप बनाने के लिये सिख साहित्य के प्रारंभिक उपलब्ध प्रयासों पर कार्य किया। *आदि ग्रंथ* में सिख गुरूओं और मध्यकालीन भक्ति सूफी सन्तों तथा बाबा फरीद, रविदास, रामानंद, भगत भिखन, कबीर और नामदेव के लगभग 6000 पद संकलित हैं। *आदि ग्रंथ* को उसी वर्ष हरमंदिर साहिब के अन्दर स्थापित किया गया, जिसकी नींव का पत्थर 1589 में लाहौर के जनप्रिय सन्त सूफी मियां मीर (मृत्यु 1644) द्वारा रखा गया था ।

वैसे तो गुरू अर्जन की मृत्यु एक रहस्य बनी रही लेकिन सिखों के समकालीन इतिहास को वर्णित करने में एक महत्वपूर्ण तिथि बन गई। इस घटना को शांतिप्रिय धार्मिक परम्परा का उग्र परम्परा में परिवर्तित होने की एक पहचान के रूप में भी देखा जाता है। जे. एस. ग्रेवाल उद्धरित करते हैं कि भाई गुरूदास ने गुरू हरगोविन्द (मृत्यु 1644) द्वारा शुरू की गयी नयी उग्र परम्परा को न्यायोचित माना। जिसमें कहा गया कि बगीचे की सुरक्षा के लिये कठोर और कांटो से भरी किकर की झाड़ियों की जरूरत होती है। मुगलों द्वारा की जाने वाली हिंसा के प्रतिकार के लिये सिख परम्परा में बढ़ती उग्रता, बाद में आने वाले सिख गुरूओं की शहादत को तेज करने वाली थी। यद्धपि यह समझना आवश्यक होगा कि बलिदान (शहीदी या शहादत) पंजाब में मुगल शासन के अंर्तगत कोई नया या अनोखा नहीं था। ईश्वर दयाल गौड़ बताते हैं कि मुगल शासन से पूर्व सल्तनत प्रशासन में पंजाब में बलिदान (शहादत) की परम्परा का लम्बा इतिहास रहा हैं, और भिन्न–भिन्न तरीकों से शहादत दिये जाने की एक वृहत सूचना उपलब्ध है। इनमें प्रेम प्रसंग में शहीद होने वाले सस्सी–पुन्नू और हीर–राझाँ, विद्रोही राजपूत जमींदार दुल्ला–भट्टी, धर्म के लिये शहीद गुरू अर्जन के अतिरिक्त विभिन्न साहित्यिक 'किस्से' और 'वार' से प्राप्त प्रेरणा शामिल हैं। शहादतों की गाथायें उनके लिखे जाने के समय की सामाजिक–सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक स्थिति को समझने के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। इन सभी बलिदान–गाथाओं में एक केन्द्रीय बिन्दु (विषय) है कि राजशाही केन्द्रों विशेषकर दिल्ली और पंजाब में जड़ जमा चुकी विचारधाराओं में आपस में सम्बन्ध रहा है। यह केन्द्र के साथ उपकेन्द्रों के सम्बन्धों की दीर्घ अवधि की आपसी नजदीकियाँ और दूरियों की गाथा है। सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के इतिहासकारों ने इन शहादतों को अपने

इतिहास सम्बन्धी वर्णनों में कई बार संदर्भित किया है। लुईस फेनेच तर्क देते हैं कि जहाँगीर से औरंगजेब तक मुगल शासन का विरोध सिख राज की स्थापना की आरंभिक अवस्था का काल रहा है जो कि मध्य अठारहवीं सदी के बाद सिख बलिदानों की गाथायों में वृहत रूप से महत्वपूर्ण साबित हुआ।

5.5 सिख – मुगल संघर्ष

छठे गुरू के रूप में गुरू हरगोबिन्द की नियुक्ति उग्रता की ओर बढ़ने की सूचक रही है (मीरी का प्रतिनिधित्व अकाल तख्त और पीरी का प्रतिनिधित्व हरमिन्दर ने किया)। लोगों में जनप्रिय सच्चा पातशाह (असली राजा) के रूप में, जिसे सन्त बादशाह (जो मुगल बादशाह अकबर के लिये प्रयुक्त होता था) के स्थान पर सिख गुरूओं के सार्वभौमिकता के आदर्शों लिये इस्तेमाल किया गया। चौथे गुरू रामदास से आगे उत्तराधिकार सोंढी खत्रियों तक ही सीमित रह गया। इसने न केवल सिख गुरूओं की आर्थिक स्थिति को मजबूती दी, बल्कि उनकी राजनैतिक और सैनिक महत्ता को भी मजबूत किया। धीरे–धीरे, किसान (विशेषकर जाट) मध्य पंजाब के सिख गुरूओं की ताकत बनकर खड़े होने लगे, जो सिखों की राजनैतिक सक्रियता को बढ़ाने, उनको सिख की पहचान देने, जो मुगल शासन के विरूद्ध सार्वभौमिकता के विकल्प हेतु महत्वपूर्ण राजनैतिक और धार्मिक भूमिका अदा कर रहा था। जबकि मुगल और सिखों के बीच झड़पे चल रही थीं, सिखों में उत्तराधिकार के प्रश्न पर वैमनस्य भी चलता रहा। हरदीप सिंह श्यान उग्रवादिता की ओर झुकाव को खत्री–सिख समुदाय में क्षत्रियता की स्वीकारोक्ति मानते हैं। इसके विपरीत, डब्लू. एच. मैक्लोयड ने तर्क दिया कि सिख धर्म में जाटों के आ जाने से सिख धर्म सामरिक समुदाय में परिवर्तित हो गया। मुगल शासक, सिख गुरूओं की गतिविधिओं से शीध्र दूरियाँ बनाने लगे विशेषकर गुरू हरराय (मृ॰1661) के पश्चात्, जिन्होंने मुगल तख्त के युवराज दारा शिकोह (मृ॰1659) को सहयोग प्रदान किया जो अपने छोटे भाई औरंगजेब (मृ॰1707) के हाथों उत्तराधिकार की लड़ाई में मारा गया। सिख धर्म के नवें गुरू, गुरू तेग बहादुर (मृ॰1675) की गुरूवाई में और औरंगजेब के दिल्ली पर हुकूमत के दौरान सिख–मुगल संघर्ष अपने चरम पर रहा।

गुरू तेग बहादुर जन सभाओं का दौरा कर, नए भजन संगीत रचकर तथा कवियों को दरबार में निमंत्रित कर सिख समुदाय को संगठित करते रहे। उनके इस धार्मिक कदम को अच्छा जन समर्थन मिला। गुरू बराबर नियमित दरबार लगाते रहे। करतापुर और रामदासपुर के उत्तराधिकार सम्बन्धी मामलों ने गुरू को किरातपुर और उसके बाद बिलासपुर के पर्वतीय मुखिया की सीमा के अंर्तगत मखोवल जाने पर मजबूर कर दिया। अपनी पूर्वी दिशा की यात्रा के दौरान, उन्होंने अपने परिवार को पटना में छोड़ दिया जहाँ उनके पुत्र गोविन्द राय का जन्म हुआ। मुगल शासन सिखों की गतिविधिओं से और गुरू की कार्यवाहियों से दूरियाँ बनाकर रह रहा था, हालाँकि गुरू द्वारा स्वयं को सिखों से अपने को एकमात्र सच्चे और निर्भीक और ज्ञानी गुरू के रूप में स्वीकार किये जाने पर जोर दिया जाना औरंगजेब तक पहुँचाया जा रहा था। इसके अलावा 1699 के मुगल शासन के सामान्य आदेश से इस्लाम को छोड़ कर बाकि सभी धर्मों के सभी स्कूलों और मंदिरों को ध्वस्त किये के फरमान से सरहिन्द में तनाव पैदा हो गया, जहाँ एक सिख मंदिर को गिरा दिया गया और उसकी जगह पर एक मस्जिद का निर्माण किया गया, जिसे सिखों द्वारा बदले में गिरा दिया गया। 1675 में गुरू तेग बहादुर को विद्रोह भड़काने का इल्जाम लगाकर मार दिया गया। गुरू का चाँदनी चौक दिल्ली में यह दोष लगाते हुए कि वह

काश्मीरी ब्राहम्णों को मुगलों द्वारा उनकों इस्लाम में परिवर्तित किये जाने के प्रयासों के विरूद्ध सहयोग कर रहे थे, सर कलम कर दिया गया।

जब वह केवल नौ वर्ष के थे गुरू गोविन्द (मृ॰1708) गुरू तेग बहादुर के उत्तराधिकारी बने। किवदंती है कि एक चिश्ती साबरी सन्त भीखम शाह, जो पटियाला के पास स्थित गाँव घूरम के थे, को यह सहज बोध हुआ कि गोविन्द राय जी का जन्म हुआ है, और वह उनके दर्शन के लिये पटना की यात्रा पर गये। वह अपने साथ दो बर्तनों में खीर लेकर गये – जिसमें से एक मुस्लिम के घर से ली गई थी और दूसरी एक हिन्दू के घर से। जब भीखम राय ने गोविन्द राय को खीर समर्पित की तो उन्होंने दोनों बर्तनों को अपने दोनों हाथों से छुआ। पीर ने घोषणा की कि यह बालक हिन्दुओं और मुसलमानों का संरक्षक बनेगा। ऐसे उदहारण मुग़लो और सिखों की तनातनी को नितांत धर्म की जंग पर विवेचित करने की कोशिश को नकारते हैं। गुरू गोविन्द वापस पंजाब आ गए और जहाँ वे शिवालिक की पहाड़ियों में रहकर बड़े हुए और 1665 में उनके पिता द्वारा स्थापित गाँव आनंदपुर में राज करने लगे। शीघ्र ही यह गाँव शहर में परिवर्तित हो गया और जिसे गुरू गोविन्द सिंह द्वारा पर्वतीय मुखियों के हमलों से बचाने के लिये चारों ओर से दीवारों से सुरक्षित किया गया। पर्वतीय मुखिया, जो मुगल शासकों के जागीरदार थे, और गुरू गोविन्द सिंह की उपस्थिति को संदेह की दृष्टि से देखते थे। सिख अपनी आवश्यकताओं के लिये पड़ौसी गाँवो पर निर्भर थे, जिसके कारण इन पर्वतीय जागीरदारों के क्रोध का सामना करना पड़ता था।

सिखों ने फसल की कटाई के त्यौहार बैसाखी के समय प्रति वर्ष आनंदपुर में एकत्र होना आरंभ कर दिया। 1699 के आरंभ में, इसी दिन, गुरू गोविन्द सिंह ने खालसा पंथ (पवित्र सिखों का समुदाय) की नींव रखी। खालसा की नींव रखे जाने का आंरभिक समारोह (खाण्डे की पहुल) उस क्षेत्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसमें सिख समुदाय के लोगों को पहचान के पाँच बाह्य चिन्हों का धार्मिक संस्कार दिया गयाः केश (बालों को ना काटा जाना), कंघा, कड़ा (कच्चे लोहे का चूड़ा) कच्छा (अंर्तवस्त्र) और कृपाण (तलवार)। एक आचार–संहिता (राहित) दी गई और उनको एक ही पहचान क्षत्रिय दी गई (सिंह या कौर, चाहे वह किसी भी पृश्ठभूमि से आते हों)। सिखों को खालसा धर्म संस्कार दिया गया जिसमे गुरुओं की वंशावली से वैधता देने की भी कोशिश की गयी। खालसा जिसमें अधिकतर सामान्य किसान और जमींदार थे, मुगलों की सार्वभौमिकता के विरोध का प्रतीक बन गया। मुग़लों के दक्षिण में व्यस्त हो जाने के कारण दिल्ली से मुगल शासकों की अनुपस्थिति ने खालसा सिख के अंर्तगत वैकल्पिक सार्वभौमिकता की संभावना को मजबूत किया। निक्की गुरिन्दर सिंह ने इसे नारी के दृष्टिकोण से देखा, जहाँ पर नर और नारी दोनों को अमृत (मीठा पानी) चखाया जा सकता था। ऐसा माना जाता है कि यह अमृत दुधारी तलवार से मथ कर बनता था। वह अमृतसर की माता भागो की प्रेरणादायक कहानी का वर्णन करती है, जिसने लोगों को गुरू गोविन्द सिंह की तरफ से मुगलों के विरूद्ध युद्ध करने के लिये एकत्र किया। 1705 में वह स्वयं भी उनकी ओर से लड़ी और मुक्तसर के युद्ध में घायल हुई।

1688 और 1705 के दौरान, गुरू गोविन्द सिंह ने एक दर्जन से ज्यादा लड़ाईयाँ लड़ी। 1704 में मुगलों द्वारा आनंदपुर पर घेराबंदी के दौरान, उनकों आनंदपुर छोड़ कर जाना पड़ा। उनके छोटे दो पुत्र और गुरूजी की माता को सरहिन्द और मलेरकोटला की सेना ने पकड़ लिया और गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया। सिरहिंद के मुगल सरदार वजीर खान, ने मलेरकोटला के नवाब को अवसर दिया कि वह सिखों से युद्ध में मारे गये अपने दो भाइयों की मृत्यु का बदला गुरू गोविन्द सिंह के दो पुत्रों को मार कर ले। शेर मोहम्मद खान ने यद्यपि गुरू के

निर्दोष बेटों को सजा देने से इनकार कर दिया। तथापि निरंकुश वजीर खान ने आदेश दिया कि उनको जीवित 'सिरहिंद की दीवार' में चुन दिया जाये। शेर मोहम्मद खान ने इसका प्रतिरोध किया और जाहिर तौर पर इस नृशंसता की निंदा करते हुए औरंगजेब को पत्र (जिसे *हा दा नारा* कहा जाता था) लिखा। यद्यपि गुरू के बेटों को नहीं बचाया जा सका, न ही इस घटना के बाद औरंगजेब अधिक दिन तक जीवित रहा, किन्तु शेर मोहम्मद की इस भावना की गुरू द्वारा प्रशांसा की गई जिन्होंने घोषणा की, कि 'उसका वंश सदा हरा रहेगा'। बाद में शेर मोहम्मद खान सिखों के विरूद्ध मुगलों को सक्रिय सहयोग देने से बचता रहा। जब गुरू गोविन्द सिंह के शिष्य बन्दा बहादुर (मृ॰1716) ने उनके पुत्रों के उत्पीड़न का बदला लेने के लिये सिरहिंद का विनाश किया, तब उसने मलेरकोटला पर चढ़ाई नही की।

बोध प्रश्न – 2

1) मुगल शासकों और सिख गुरूओं के सम्बन्धों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) मुगल और सिखों के बीच संर्घष पर टिप्पणी दीजिए।

.....

.....

.....

.....

5.6 सिख राज्य की आरंभिक स्थापना

अपने जीवन के अंतिम पड़ाव में गुरू गोविन्द सिंह दक्षिण की ओर चले गए। मुगल उत्तराधिकारी बहादुर शाह के साथ सम्बन्ध सुधारने के प्रयास विफल होने पर गुरू को 1708 में नांदेड़ में एक पठान द्वारा मार दिया गया। मृत्यु से पहले, गुरू गोविन्द सिंह ने *आदि ग्रंथ* के विस्तृत स्वरूप को स्थापित कर दिया और उसे ही गुरू (*गुरू ग्रंथ* के रूप में) नामित कर दिया। इसके साथ ही गुरू के उत्तराधिकारी की परम्परा समाप्त हो गई। बन्दा बहादुर जो गुरू को नांदेड़ में मिला था, वह उनके पदचिन्हों पर चलकर पंजाब की ओर चल दिया। उसको सिखों को संबोधित हुकुमनामें (पत्र) भी दिये गये थे और कहा गया था कि उसका सहयोग करें। सिख इतिहास में ऐसा कहा जाता है कि वह पंजाब गुरू गोविन्द सिंह के बालकों की हत्या का बदला लेने के लिये पहुँचा। यह बात धाधी (चारणों) द्वारा प्रति वर्ष 'शक सरहिन्द' के नाम से फतेहगढ़ साहिब में शहीदी जोर मेला में और कई मौकों पर लगातार दोहराई जाती थी। बंदा और उसके सहयोगी हिसार सरकार से प्रविष्ट हुए और 1709 तक इतनी अधिक शक्ति अर्जित कर ली कि सिरहिन्द सरकार के अंर्तगत समाना शहर को रौंद सके। समाना को धूल में मिला दिया गया और इसके हजारों बाशिंदों को मार दिया गया।

1707 में सरहिन्द का लूटा जाना मुगल नियंत्रण वाले पंजाब के लिये एक बड़ा आघात था। यद्यपि इस पर मुग़लों का पुनः कब्ज़ा हुआ, परन्तु 1712 में मुगलों के हाथ से फिर निकल गया। मुगलों की सम्पन्न धरोहर किला, आवास, खानकाह, आदि को ध्वंस्त किया गया, मस्जिद को भी नहीं बख्शा गया।

दिल्ली सूबे के उत्तरी भाग में युमना के दोनों ओर के बड़े हिस्सों पर बंदा के सिखों का नियन्त्रण था। उन्होंने जो पंजाब के दो बड़े क्षेत्र; बारी नदी के ऊपरी दोआब और जालंधर सरकार पर मुगल नियंत्रण को भी खतरा पैदा कर दिया था। सिंध सागर दोआब और पंजाब के दूसरे हिस्सों के जमींदार भी विद्रोह करने लगे थे, यद्यपि अभी बंदा से जुड़े नहीं थे। मुजफ्फर आलम बताते हैं कि बंदा ने एक ऐसे विद्रोह की आगवानी की जो मुख्यतया जाटों का था, जो उस समय शक्तिशाली जमींदार और कृषि सम्पत्ति के मालिक थे, जिनको कृषक समाज में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त था। जाटों के अतिरिक्त परम्परा से मैला ढ़ोने वाले निम्न जाति का एक वर्ग भी और अन्य निम्न जातियां भी बंदा के साथ हो गई। अपने प्रभुत्व के बढ़ने के एक वर्ष के भीतर बंदा के घुड़सवारों की सेना की संख्या बढ़ कर चार–पाँच हजार और पैदल सैनिक सात–आठ हजार से बढ़कर तीस–चालीस हजार हो गये। उसने मुगल बिचौलियों को बेदखल कर लौहगढ़ में राजगद्दी बनाई। उसने सिक्के चलाये, हुक्मनामें जारी किये और स्वयं को सच्चा पातशाह घोषित किया। पर्वतीय मुखिया लोग जिनको पहले मुगलों ने अपने आधीन कर रखा था, जो वार्षिक नजराने पेश करते थे, सभी सिखों के साथ आ गये। इन मुखियाओं ने शाही फरमानों का खुलकर विरोध शुरू कर दिया, बंदा के सिखों को शरण और अक्सर हथियार और घोड़ो से मदद की।

मुगल मदद–ए–माश रखने वाले, जो बुरी तरह प्रभावित थे और जिनसे सभी सुविधायें छीन ली गई थीं, सभी बंदा के विरूद्ध अब्दुस समद खान के नेतृत्व तले आ गये। धीरे–धीरे गैर सिख जाट और गैर जाट–जमींदार, खत्री और गूजर स्वयं को अकेला और पृथक महसूस करने लगे। विद्रोह के कारण व्यापार मार्गों में व्यवधान आया जिससे अमीर, व्यापारियों, साहूकारों, कपड़े के व्यापारियों, बुनकरों आदि जो मुगल शासन में लाभार्थी हुआ करते थे, सभी को अत्याधिक हानि हुई,। खत्री समाज, प्रदेश के महत्वपूर्ण इजारेदार हुआ करते थे। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में लिखते हुए, गणेश दास वडेरा बताते है कि बंदा के कार्यकाल में भी करों का बोझ उतना ही था, जितना मुगल शासन में हुआ करता था। बहादुर शाह की मृत्यु के बाद (मृ॰1712) नये बादशाह जहांदार शाह (मृ॰1713) ने पर्वतीय मुखियों के प्रति नरम नीति का पालन किया। शिवालिक पहाड़ियों के पूर्व की ओर सिखों को अपनी पैठ न बनाने देने के फरूख सियार के प्रयासो के कारण धीरे–धीरे बन्दा को गुरूदासपुर और बारी दोआब तक ही सीमित कर दिया गया। सन् 1715 में, अब्दुस समद खान, लाहौर के प्रशासक के नेतृत्व में उसकी सेना ने, बंदा के सिखों को गुरूदासपुर नांगल में रोक लिया और गांव को कब्जे में ले लिया। दिसम्बर 1715 में मुगलों ने सिखों को कैद करना शुरू किया और 1716 में जून में दिल्ली में शेख कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी की मजार के निकट बंदा को मार दिया गया। इस घटना ने मध्यकालीन पंजाब में पहले सिख राज्य की स्थापना के लिये भीतर से पनपे अन्य प्रयासों की सफलता को समाप्त कर दिया।

1719 में फारूख सियर की मृत्यु को मुगल साम्राज्य के विघटन के आरंभ के लिये भी जाना जाता है। उसका उत्तराधिकारी मोहम्मद शाह अपनी मृत्यु 1748 तक अगले बीस साल तक ऐश करता रहा। आर्थिक कठिनाईयाँ फिर भी चलती रही, क्योंकि शासक के अंर्तगत भूमि

(खलीसा) से आय घटती गई, क्योंकि शाही खजाने नियमित तौर पर लगान की किस्तें भेजने में प्रांतीय प्रशासक गोलमाल करने लगे थे। मुगल शासक साम्राज्य की सीमाओं पर से अपना नियंत्रण खोते जा रहे थे। इस काल खण्ड में मुगल शासक दख्खिन पर अपना नियंत्रण कमजोर पा रहे थे, क्योंकि (1725 से दख्खिन के मुगल वायसराय) निजाम–उल–मुल्क आसफ जाह दख्खिन के आभासी शासक बन चुके थे। मराठाओं ने भी इसी प्रकार गुजरात और मालवा को अपने अधिकार में कर लिया था, और अपना प्रभावी नियंत्रण राजस्थान में चंबल नदी तक बढ़ा लिया था। 1738 में, परशिआ के शाह नादिर शांह (मृ॰1747) ने कंधार और काबुल पर कब्जा कर लिया। शीघ्र ही 1739 में, वह मुगल प्रान्त लाहौर में प्रवेश कर गया। उसने जकारिया खान को हरा दिया। जकारिया खान की गवर्नर की पदवी 20 लाख रूपये मिलने पर पुनः नियमित कर दी गई। इसके बाद नादिर शाह ने सिरहिंद में मुगल सेना को हराया और जल्दी ही दिल्ली पहुँच गया। वहाँ उसने कत्ले–आम का आदेश दिया और लोगों पर जीवन रक्षा कर लगाया। ऊँटों और घोड़ों की लम्बी कतारों में लूट का सामान लाद कर उसने दिल्ली छोड़ दी। 1745 में जकारिया खान की मृत्यु के बाद लाहौर के गवर्नर की स्थिति में गिरावट आ गई। इसका कारण मुगल बादशाह मुहम्मद शाह की सनक कि वह पूर्व गवर्नर के बेटे को नामित नहीं करना चाहते हैं, भी रहा। इसने अहमद शाह अब्दाली की स्थिति को मजबूत किया जिसने 1747 में नादिर शाह के आधीन पूर्वी राज्यों पर अपना दावा छोड़ दिया था। उसने शीघ्र ही लाहौर पर कब्जा कर लिया। वह सरहिंद की ओर बढ़ा जहाँ उसे हार मिली और जिसके कारण उसने कदम पीछे हटा लिये। 1752 में उसने लाहौर कब्जा लिया और फिर एक साल बाद ही अहमद शाह अब्दाली ने लाहौर प्रान्त पर कब्जा कर लिया इसके साथ ही मुलतान, काश्मीर और सिरहिंद की सरकार भी हासिल कर ली। पंजाब अब अफगानों के नियंत्रण में आ गया और अब्दाली के बेटे तैमूर शाह को लाहौर का गवर्नर नियुक्त किया गया।

मुगल शासन पर बढ़ते दबाव के बावजूद भी सिखों ने छापेमारी की लड़ाई से अपना अस्तित्व बनाये रखा, ग्रामीण इलाकों में छोटे गुटों में घूमते रहते, मुगल शासकों और उनके मित्रों सहयोगियों को छेड़ते रहे और विध्वंस करते रहे। जे. एस. ग्रेवाल रेखांकित करते है कि किस प्रकार विशेषकर दीवाली और वैसाखी के उत्सवों के दौरान अमृतसर खालसा सिखों के लिये घूमने मौज करने का केन्द्र बन गया था। सिखों को नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली जैसे अफगानों के हाथों भी नुकसान उठाना पड़ा। इतना होने के बाद भी वे बच गये और मध्य अठारहवीं शताब्दी तक उनकी संख्या बढ़ गई। शक्तिशाली मुखिया जैसे जस्सा सिंह अहलूवालिया (1765 में) ने स्वयं की सार्वभौमिकता घोषित करते हुए लाहौर में सिक्के भी चलाये। इन मुखियाओं ने नई संस्थायें भी विकसित की जैसे 'राखी' (अन्न उत्पादन में हिस्सा देने के एवज में किसानों का संरक्षण), 'मिस्ल' (मुखिया के नेतृत्व में स्वतंत्र संघ), दल खालसा (बड़े संघों का संगठन) और 'गुरूमाता' (गुरू के संकल्प या आम सहमति जो सामान्यता अमृतसर में आयोजित होती थीं), जो उनकी बिरादरी पर आधारित समानता से जुड़े पावक सम्बन्ध होते थे। ये सभी पंजाब में राज्य की स्थापना के लिये वैचारिक प्रक्रिया के महत्वपूर्ण अंग थे। इस प्रकार के बारह संघ (मिस्ल) हैं, जिनमें से अहलूवालिया संघ (जस्सा सिंह अहलूवालिया के नेतृत्व में), सुकेर चकिया मिस्ल (चरत सिंह और बाद में उनके पुत्र रंजीत सिंह के नेतृत्व में, जिन्होंने 1799 में लाहौर में खालसा राज स्थापित किया था), भांगी मिस्ल (हरी सिंह भांगी के नेतृत्व में), कन्हैया मिस्ल

(जय सिंह के नेतृत्व में), रामगरहिआ मिस्ल (संघ) (जस्सा सिंह राम गरहिआ के नेतृत्व में) प्रभावी हुआ करते थे। उन सब में सर्वाधिक शक्तिशाली रंजीत सिंह थे जिन्होंने कमजोर मिस्लों को अपने प्रभाव में लिया और गठबन्धन बनाये। उसका खालसा राज तत्कालीन सामाजिक स्तरीकरण (जातियों के आधार पर), साथ ही साथ सिख गुरूओं द्वारा दिये गये नये वैचारिक ढ़ाचें के मिशन का प्रतिनिधित्व करता था। खत्री और उदासी सिखों ने इस ढांचे के निर्माण में महत्वपूर्ण कार्य किया, जिनकों नये राज्य द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया। वे विभिन्न धार्मिक संस्थाओं के स्वभाविक संरक्षक थे।

5.7 खालसा पंथ से पूर्व व पश्चात की सिख पहचान

सिख इतिहास के प्रारंभिक स्रोत्र जनम साखी रहे हैं, गुरू नानक के जीवन काल की कहानियाँ और जीवनी और अन्य भक्त, सन्त और फकीर तथा उनकी कवितायें आदि। इन जीवनियों को अधिकांश सत्रहवीं और अठारहवी शताब्दी में लिखा गया था। भाई गुरूदास भल्ला (मृ॰1657) ने सिख गुरूओं की रचनओं पर *वार* (विवरण–टीके) लिखे। मध्यकालीन पंजाब से जुड़े अधिकतर स्रोत्र कविताओं के रूप में हैं। यही बात सिख गुरूओं द्वारा रचित साहित्य के लिये भी सही है; *आदि ग्रंथ* से *दशम ग्रंथ* तक, पंजाबी से ब्रज और परशियन तक। अठारहवीं शताब्दी के आरंभ से यह प्रयास किया गया कि सिख इतिहास उसके अपने ही इतिहासकारों की जुबानी लिखा जाय, जिसमे मुख्यतः अठारहवीं शताब्दी में लिखे गए गुरबिलास की परंपरा बनी। इनमे साहित्य सेनापति की *'गुरू शोभा'* (1711 के लगभग पूर्ण किया गया) खास स्थान रखती है । अन्य स्रोत्रों में चौपा सिंह के *'रहितनामा'* जो अठारहवी शताब्दी के मध्य आचार संहिता के एक रूप में नज़र आता है। अन्ने मरफी ने रेखांकित किया है कि इन स्रोत्र का खास जोर इतिहास में गुरू गोविन्द सिंह के चरित्र का उन्मुखीकरण करना रहा और इसलिये यह सिख इतिहासकारों की ऐतिहासिक सोच और उनकों संरक्षण देने वालों की दृष्टि का परिचायक रहा हैं। सेनापति मुख्य रूप से आनंदपुर साहिब की सार्वभौमिकता और उसके धार्मिक प्रभाव के लिये ही चिंतित दिखे। राजनैतिक सार्वभौमिकता पर उनका ध्यान नहीं था। उनका साहित्य समाज पर गुरू की सार्वभौमिकता की चिन्ता करता है न कि राज्य की स्थापना की। खालसा के *'राहित'* साहित्य से इसका और प्रमाण भी मिल जाता है जो सिख समुदाय के शैशव काल को परिभाषित करता है। *राहित* साहित्य विभिन्न विषयों से पूर्ण है – गुरू के संबंधी जनों के प्रति आदर, अन्य धर्मों के, समूहों के पवित्र स्थलों की यात्रा या प्रवेश पर निषेधाज्ञा आदि। ये साहित्य मूलतः स्मृति और जीवन के संदर्भ में स्थापित किया गया है।

सिख की पहचान केवल खालसा में ही स्पष्ट की गई हो ऐसा भी नहीं है। अन्य बहुत से पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग प्रारंभिक सिख आंदोलन से जुड़ा हुआ है जैसे 'नानक पंथ', 'निर्मल पंथ', 'गुरू सिख' और 'गुरूमुख मार्ग'। 1699 के पश्चात, खालसा सिख 'गुरूमुख' के नाम से जाने गये, और अन्य सभी को 'मनमुख' की श्रेणी में रखा गया। अठारहवीं सदी के मध्य से खालसा से इतर सिख 'सहजधारी' कहलाये गये, जो नानक पंथी और 'उदासी' थे। आधुनिक सिख की पहचान कई रूप में हुई – जैसे खालसा, नामधारी, निरंकारी, निर्मला निहंग, अमृतधारी, केशधारी, मोना, सहजधारी, गुरूमुख, महजबी आदि। इनमें से बहुत सी एकल नहीं रही बल्कि एक दूसरे से समाहित हो गई।

बोध प्रश्न – 3

1) सिख राज्य की स्थापना के लिये उत्तरदायी कारण क्या थे ?

.....

.....

.....

.....

2) सिख पहचान की प्रक्रिया और उसमें खालसा के योगदान पर एक टिप्पणी दीजिये।

.....

.....

.....

.....

5.8 सारांश

इस इकाई में हमने भारत में सिख प्रभाव के उदय पर विचार किया। कृषि–कार्य के विस्तार और उनके परिणाम स्वरूप विशेष कर जाट किसानों के मध्य आई सम्पन्नता ने क्षेत्रीय पहचान के अभ्युदय और उसके मजबूत किये जाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुगलों के आगमन और धीरे–धीरे मुगल साम्राज्य के पुख्ता होने में हमने केन्द्रीकृत राजनैतिक स्वरूप के आविर्भाव को देखा। तदनन्तर, क्षेत्रीय आकांक्षाओं ने मुगल प्रशासन को चुनौती देना आरंभ किया, जो पंजाब के मामले में सिख पहचान के अभ्युदय से आसान हो गया। खालसा के बन जाने के बाद राजनैतिक लामबन्दी अधिक शक्तिशाली ढंग से होने लगी और अंततः सिख राज की स्थापना में परिणित हुई।

5.9 शब्दावली

उदासी – गुरू की प्रसिद्ध यात्रायें

जन्मसखी – गुरू नानक की जीवनियाँ

लंगर – सामूहिक रसोई

बावली – कुआँ

मसन्द – जो गद्दी पर बैठता है

संगत – समागम – समुदाय

बानी – गुरू के शब्द (सबद)

शहीदी या भाहादत – बलिदान

छरबार – राज–दरबार

खाण्डे की पहुल – खालसा में प्रवेश का उत्सव

मिस्ल – मुखिया के नेतृत्व में स्वतंत्र संघ

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न – 1

1) 5.3 भाग कृप्या देखें, यह अपेक्षा की जाती कि उत्तर में सोलहवीं शताब्दी में राजनैतिक और सामाजिक स्थितियों और उनके पनपने पर प्रकाश डाला जाये।

2) भाग 5.2 कृप्या देखें, यह अपेक्षा की जाती है कि इस इकाई में क्षेत्रीय पहचान को आकार देने में कृषि उपज के विस्तार और सिंचाई साधनों के योगदान को स्पष्ट किया जाये।

बोध प्रश्न – 2

1. कृप्या 5.4 भाग देखें। मुगल शासकों और सिख गुरूओं के बीच सम्बन्धों का एक लम्बा इतिहास रहा है, इसलिये यह अपेक्षा की जाती है इस सम्बन्ध में एक छोटा संक्षिप्त विवरण प्रास्तुत किया जाए।

2. भाग 5.5 देखें। मुगल बादशाहों और सिख गुरूओं के बीच संघर्ष के लिये जिम्मदार कारणों की सूची लम्बी हैं। आपका उत्तर इसकी परीक्षा करे कि संघर्ष का राजनैतिक चरित्र मुगल सार्वभौमिकता के राजनैतिक कारणों के इर्द–गिर्द घूमता रहा।

बोध प्रश्न – 3

1) भाग 5.6 देखें। उत्तर में राज्य की स्थापना की प्रक्रिया पर विस्तृत टिप्पणी दी जाये। किस प्रकार धीरे–धीरे सिख राजनीति ने राज्य का स्तर प्राप्त किया।

2) भाग 5.7 देखें। खालसा के महत्व को प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट किया जाये कि किस प्रकार खालसा की पहचान स्पष्ट करने में संप्रदाय को चिन्हक प्रदान किये गये।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Alam, Muzaffar. 2001. *The Crisis of Empire in Mughal North India: Awadh and the Punjab 1707-1748*. New Delhi: Oxford University Press.

Fenech, Louis E. 2005. *Martyrdom in the Sikh Tradition: Playing the 'Game of Love'*. New Delhi: Oxford University Press.

Gaur, Ishwar Dayal. 2009. *Society, Religion and Patriarchy: Exploring Medieval Punjab Through Hir Waris*. New Delhi: Manohar.

Grewal, J. S. 2002. *Sikhs of the Punjab*. New Delhi: Cambridge University Press.

Irfan, Habib. 1999. *Agrarian System of Mughal India 1556-1707*. New Delhi: Oxford University Press.

Jakobsh, Doris R. eds. 2010. *Sikhism and Women: History, Texts and Experience*. New Delhi: Oxford University Press.

McLeod, W. H. 2007. *Essays in Sikh History, Tradition and Society*. New Delhi: Oxford University Press.

Murphy, Anne. 2012. *Materiality of the Sikh Past: History and Representation in Sikh Tradition*. USA: Oxford University Press.

Singh, Chetan. 1991. *Region and Empire: Punjab in the Seventeenth Century*. New Delhi: Oxford University Press.

Singh, Pashaura. 2003. *Guru Granth Sahib: Canon, Meaning, And Authority.* New Delhi: Oxford University Press.

Singh, Surinder. 2020. *The Making of Medieval Punjab: Politics, Society and Culture c.1000-c.1500*. New Delhi: Manohar.

Syan, Hardip Singh. 2014. *Sikh Militancy in the Seventeenth Century: Religious Violence in Mughal and Early Modern India*. London: I.B. Tauris.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY